IJAER/ Jan-Feb 2022/Volume-11/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

परिवर्तित परिवेश में जीवन–मूल्य

डा. अनीता यादव
सह–आचार्य हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राजस्थान)

परिवेश वह वातावरण है जिसमें हम जीवन निर्वाह करते हैं पर इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों तथा स्थितियों से निर्मित एक विशेष प्रकार के वातावरण को परिवेश कह सकते हैं जिसमें व्यक्ति अपने को देख पाता है उसकी अनुभूतियां जो उसके निर्माण व विघटन का कारण बनती हैं। उसे आलोड़ित किए बिना नहीं रहती ।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। परिवर्तन के इसी क्रम में मूल्य भी परिवर्तनशील है। समय अनुकूल बदलते रहते हैं। समाज में नए मानदंडों का जन्म होता रहता है। अतः यह स्वाभाविक है कि मनुष्य की आदतों तथा व्यवहारों में बदलाव आ जाता है। मानव एक विवेकशील प्राणी है। वह अपने विवेक के अनुसार मूल्यों को निर्धारित करता है। परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होने वाले मूल्य को सामाजिक मूल्य कहा जाता है। जब के शाश्वत मूल्य ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं वे कालजई होते हैं ।

मूल्य एक व्यापक शब्द है। सामान्य अर्थ में कहे गुण मूल्य है। सद्‌गुण ही मूल्य है। मूल्य हमारे व्यवहार चरित्र का निर्माण करते हैं। व्यक्ति का रहन सहन खानपान वेशभूषा विचार व्यवहार दृष्टिकोण आदि मूल्यों से नियंत्रित होते हैं। मूल्य किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के परिचायक हैं।

प्रत्येक समाज में कुछ आदर्श होते हैं जिन पर सामाजिक प्रगति तथा परिवर्तन की दिशा निर्भर करती है। समाज समूह में जो भी घटनाएं घटित होती हैं समाज उनका उचित अथवा अनुचित के रूप में मूल्यांकन करता है। इसी के आधार पर समाज में कुछ प्रमाप स्टैंडर्ड्स स्थापित हो जाते हैं इन्हीं प्रमापों के आधार पर समाज में घटित घटना को सही या गलत उचित या अनुचित ठहराया जाता है और यही जीवन मूल्य कहलाते हैं।

जाति, समाज, राष्ट्र के मूल्यों में विभिन्नताएं होते हुए भी मानव मूल्य समान है जैसे सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, प्रेम सहानुभूति, परोपकार, दया आदि मानवतावादी मूल्य देशकाल समाज की सीमाओं को लांघ कर समस्त दिशा में समान है और इन्हें विश्व में पूर्णतया सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

जीवन–मूल्य और मानव–जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध शरीर एवं प्राण की तरह अविच्छेद है मानव सभ्यता और संस्कृति इन्हीं जीवन मूल्यों और मूल्य स्थितियों से अक्षुण्ण बनी रहती है ।

जीवन मूल्यों के पर्याय के रूप में भारतीय चिन्तनधारा में ''पुरुषार्थ' शब्द का प्रयोग हुआ है । पुरूषार्थ का तात्पर्य है प्रयत्न–वे प्रयत्न जिनसे जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों फल पुरूषार्थ कहलाये हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति ही जीवन का सर्वागीण रूप है। जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं जो धर्म के साथ न जुड़ा हो। अर्थ धर्म से जुड़ा है, काम धर्म से जुड़ा है और मोक्ष धर्म के साथ जुड़ा है। पुरुषार्थों में अर्थ का स्थान धर्म के बाद आता है। धर्म का मार्ग छोड़े बिना जो अर्थ संचय किया जाता है, वहीं उत्तम है। अर्थ से काम की पूर्ति होती है। जब मनुष्य धर्म के अनुसार अर्थ का उपयोग करता है तो मोक्ष स्वतः सिद्ध हो जाता है।

भारतीय दार्शनिकों ने जीवन के पुरुषाथों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को ही जीवन–मूल्य के रूप में स्वीकारा है। मोक्ष जीवन का परम मूल्य (लक्ष्य) है। अर्थ और काम उस लक्ष्य तक पहुँचने के साधन तथा साधनों को प्रयोग में लाने के नियम ही धर्म है ।

इन चारों मूल्यों को संक्षेप में इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है । ''मोक्ष'' मानव जीवन के चरम उद्देश्य एवं मानव की आन्तरिक, आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक है । अर्थ मानव के प्राप्त करने के सहज स्वभाव की ओर संकेत है तथा उसकी धन के संग्रह उपभोग व अन्य तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों को बतलाता है । काम, मानव के सहज स्वभाव और भावुक

जीवन को व्यक्त करता है तथा उसकी काम भावना और सौन्दर्य प्रियता की प्रवृत्ति तुष्टी की ओर संकेत करता है । अर्थ और काम ये दोनों इस संसार में मनुष्य के सांसारिक लगाव, कार्य–कलाप एवं जीवन की सफलता का प्रतिनिधित्व करते हैं । धर्म मानव की पाश्विक और दैवीय प्रकृति के बीच की श्रृंखला है।

''इस प्रकार धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष भारतीय जीवन के प्राचीनतम मूल्य हैं और एक उच्चतम नैतिक जीवन और नैतिक ज्ञान को अभिव्यक्त करते हैं। मूलतः ये पुरुषार्थ साधन भी हैं और साध्य भी, जीवन की सर्वांगीणता इन्हीं में समाहित है'' (1)।

भारतीय दर्शन में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा करते हुए मूर ने इन्हीं चार पुरुषार्थों को स्वीकार कर उन्हें नवीन नाम देने की चेष्टा की है ये अर्थ (अर्थ), आनन्द (काम), धर्माचरण (धर्म), पूर्णता या आध्यात्मिक स्वतंत्रता (मोक्ष) चार मूल्य स्वीकार करते हैं (2)।

हमारे यहाँ मूल्यों का विवेचन मुख्यतया धर्म के संदर्भ में हुआ है। जिन गुणों को धर्मानुकूल कहा गया है वे जीवन मूल्यों के ही अंश है। मनुस्मृति में भगवान मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं – धैर्य क्षमा, दया, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, बुद्धि विद्या, सत्य और अक्रोध ये मानवीय गुण ही वास्तव में नैतिक मूल्य हैं। धर्म एक ऐसा मूल्य है जो मानव जीवन की इहलोक एवं परलोक की उन्नति का साधन है और इससे मनुष्य आत्मिक शांति का लाभ कर आनन्दित होता हैं।

बूडस के अनुसार – ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं। मूल्यों में केवल यही नहीं देखा जाता है कि जो कुछ है वह सही है या गलत'' (3)।

उन व्यवहारों को ही जीवन मूल्य माना जाता है, जिससे मानव का उत्कर्ष संभव हो। आज मूल्य शब्द का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, व्यक्तिववादी, आदर्शवादी, भोगवादी आदि सभी क्षेत्रों में स्वीकृत व्यवहार के लिए होने लगा है। 'मूल्य' शब्द का आवश्यकता, प्रेरणा, आदर्श, अनुशासन, प्रतिमान आदि अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। यद्यपि परिस्थितियाँ और सन्दर्भ मूल्य के स्वरूप को प्रभावित करती है।

मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं। शाश्वत मूल्य – ये जीवन मूल्य सर्वमान्य है। आचरण, सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। ये किसी भी समय और परिस्थिति में नहीं बदलते, जैसे – प्रेम, अहिंसा, दया, सत्य, समर्पण, वात्सल्य, मातृत्व, मातृप्रेम ऐसे ही मूल्य है। परिवर्तनीय मूल्य – ये जीवन मूल्य युग और स्थितियों के अनुसार बदलते दिखायी देते हैं। जिस युग में जीवन के जो आदर्श समाज–मान्य हो जाते हैं, वे ही नवीन जीवन मूल्य से सम्बोधित किये जाते हैं। मूल्य वस्तुतः एक ही तरह के होते हैं जिनमें नयी धाराएं आकर सम्मिलित होती रहती है और कहीं कहीं ये धाराएं इधर–उधर घिसकर सूख जाती है। मूल्य बदलते है पर मूल्य प्रवाह अश्रुण्ण बना रहता है (3)।

हम भारतीय मूल्य मीमांसा को संक्षेप में निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं।

(1) चारवेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद वेदों में ऋत सत्य तथा आनन्द तत्व ।

(2.) चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष।

(3.) चार आश्रम – ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, सन्यास एवं वानप्रस्थ।

(4.) चारवर्ण – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद।

(5.) चार उपाय – साम, दाम, भेद और दण्ड (चार नीतियाँ)।

(6.) चार आर्य सत्य – दुःख का सत्य, दुख के समुदाय का सत्य, दुःख से निवृत्ति करने वाले मार्ग का सत्य, दुःख निरोध।

(7) त्रिगुण सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण।

हमारा जीवन वेदों, वेदों के ऋत, सत्य आनन्द तत्व के लिए चार पुरुषार्थ, वर्णाश्रम व्यवस्था, उपाय– नीतियों, बौद्धकालीन आर्य सत्य तथा मनुष्य–स्वभाव, गुण आदि हमारे। जीवन की श्रेष्ठ चौखटें है। इन्हीं चौखटों में भारतीय जीवन बद्ध था। इसी जीवन चौखट से हमें जीवन के असख्य महत्वपूर्ण मूल्य प्राप्त होते थे। जिससे उस काल का मनुष्य अपना जीवन अधिक उच्च एवं विशेष प्रकार से जीता था।

प्राचीनकाल की आदर्श चौखटों में क्षिप्रगति से बदलने वाली मानवी–जीवन की नई सभ्यता (आधुनिकता) आज आबद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि इस सदी का मानव न उन पुरानी चौखटों को तोड़ जोड़ देना चाहता है न उपयोग करना चाहता है । उसने अपने जीवन संस्कार एवं सभ्यतानुरूप अपनी जीवन पद्धति बना ली है और उसके अनुरूप वह नये जीवन चौखटों के उत्पादन में लगा हुआ है। उसके जीवन के परिवर्तित नए अपने मूल्य पुरानी चौखटों में नहीं समा सकते । क्योंकि आज उसके जीवन में आर्य–सत्य बुद्धकालीन नहीं रहे हैं, पुरुषार्थ वेदान्त बाहर का है, वर्णाश्रम–व्यवस्था मशीनीयुग में पीसी जा रही हैं, उपाय नीतियाँ पुरानी पड़ गयी हैं – घिस चुकी है। कारण स्पष्ट है – मूल्य परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो हर काल की एक नई आवश्यक जरूरत होती है । मूल्य बदलने से जीवन (पद्धति) बदल जाती है और जीवन पद्धति बदलने से मूल्य बदल जाते हैं। परिवर्तन ही जीवन है। विश्व के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में परिवर्तन होता ही रहता है। संस्कृति भी इसका अपवाद नहीं है। संस्कृति गतिशील वस्तु है । मानव जीवन की आवश्यकताएँ तथा प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों, संस्कृति के सार्वभौम तत्वों का प्रसार पर संस्कृति ग्रहण के कारण संस्कृति में परिवर्तन होते रहते हैं। परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। परिवर्तन के अभाव में कोई भी समाज मृतप्राय हो जाता है। सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ संस्कृति में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। संस्कृति में परिवर्तन के साथ मूल्य भी परिवर्तित होते हैं। वास्तविक मूल्य परिवर्तन का प्रमुख कारण समाज की प्रचलित नैतिक – व्यवस्था है और मनुष्य की वर्जितोन्मुखी अन्तश्चेतना का निरन्तर द्वन्द भी हैं। मनुष्य की अन्तश्चेतना प्रचलित नैतिकता को तोड़ना चाहती है, मूल्य परिवर्तन का दूसरा कारण आदर्श और यथार्थ का निरन्तर संघर्ष है। तीसरा कारण वैचारिक जगत में भी मनुष्य की नवोन्वेषणप्रियता निरन्तर बनी रहती है (4)।

औद्योगीकरण और वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप हम आध्यात्मिक मूल्यों को भूल गये है। अधिक से अधिक साधन जुटाने को हमनें प्रगति का नाम दे दिया। सारा जीवन भौतिकता की धारा में बह चला। संतोष का साधन महत्त्वाकांक्षा ने ले लिया। आर्थिक प्रगति के साथ आर्थिक विषमता की विकृति भी उभरकर सामने आयी। शोषण और लोलुपता ने आदमी आदमी के बीच दीवारें खींच दी। धर्म भी अपने वास्तविक स्वरूप से दूर हट गया। धर्म के नाम पर इतना खून–खच्चर, अनाचार हुआ कि मनुष्य की धर्म पर से आस्था ही उठ गयी।

वैज्ञानिक प्रगति और भौतिक उत्कर्ष ने नयी मानसिकता को पनपने में एक विशेष योगदान दिया। जीवन की हर सच्चाई अर्थकेन्द्रित हो चली। अर्थ की शक्ति से केवल धर्म को ही नहीं कुचला गया, अपितु नैतिकता भी क्षत–विक्षत हो चली। पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म की परम्परागत मान्यताऐ तो खण्डित हो चलीं, पर नई नैतिकता को भी स्वीकार नहीं किया गया। भौतिक उन्नति की स्पर्धा में सारे जीवन मूल्य व्यर्थ हो गये।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप धर्म और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण में मूलभूत अन्तर आया है। ईश्वर निष्ठा के बदले विज्ञान निष्ठा प्रबल हो गयी, परिणामस्वरूप व्यक्ति नास्तिकता की ओर बढ़ने लगा है इसलिए धर्म के बाहय रूपों – मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की कटु आलोचना की गई है। आज वैज्ञानिक प्रगति के कारण मानव रूचि अधिकाधिक भौतिकवादी होती जा रही है। देश में एक नयी संस्कृति का अभ्युदय हुआ जिसे ''उपभोक्ता संस्कृति'' नाम से जाना जाता है। इस नयी संस्कृति ने मनुष्य के जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन किये हैं। उसे अर्थ प्रधान और आत्मकेन्द्रित बनाया है। नये सांस्कृतिक परिवेश में परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द है। जीवन मूल्यों की अस्पष्टता है।

इस नवनिर्मित सांस्कृतिक परिवेश में जीवन के सभी मूल्य परिवर्तित से हो गये हैं। उनकी प्रासंगिकता निरर्थक सी प्रमाणित होने लगी है। ''आदर्श का अर्थ बदल गया। सेवा, त्याग, शब्द भी खोखले से हो गये गबन, डाका, कत्ल जैसे शब्द अब हमें चौंकाते नहीं सर्वोदय, पदयात्रा, भूदान, पांखड़ के पर्याय हो गये'' (5)।

आज अधिकार बोध ने व्यष्टिपरक चेतना को उभारा है फलतः कर्त्तव्यबोध का सामाजिक मूल्य क्षीण हो गया है। अधिकार बोध के साथ पनपा है – समानता, स्वतन्त्रता, स्पर्धा, असहिष्णुता व्यक्तिगत सम्मान की कमी गम्भीर धार्मिक अनुभूति का विरोध ऐहिकता का प्राबल्य और संघर्ष के लिए तत्परता और तैयारी निश्चित है। इस अधिकार बोध की चेतना

से पुराने जीवन–मूल्य, समाजपरक जीवन–बोध धुन्धला हो गया है। आज तप त्याग, वैराग्य, अनासक्ति पूरक मूल्य, सौहार्द्ध और सहज स्नेह, श्रद्धा और विश्वास आउट डेटर हैं यानि इनकी मूल्यवत्ता खण्डित हुई है। इनके स्थान पर जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई हैं, वे हैं – विचार, तर्क, वैज्ञानिकता, बौद्धिकतापरक, व्यक्तिपरक सुविधा भोगी उपलब्धियाँ। आज समाज नहीं व्यक्ति, आध्यात्म नहीं व्यवसाय, संवेदना नहीं उपयोगिता, शील नहीं अश्लील, धर्म नहीं राजनीति, आदर नहीं घृष्टता, मूल्य नहीं सुविधा की माँग है। यह समाजपरक मूल्यों से छुटकारे की माँग है। परिणामतः सामाजिक मूल्यों में बिखराव आ गया है। मनुष्य एकाकी हो गया हैं, अपने में सिमटा हुआ स्वार्थी, घुटन और टूटन का पर्याय, आस्था नहीं अनास्था, आदर नहीं अनादर, नैकट्य नहीं दूरी, परस्पर विश्वास और सौहार्द नहीं, शंका व विद्वेष को महत्व मिला है। जो सामाजिक मूल्य कल तक हमारे आदर्श थे वहीं आज हमारी न्यूनता, हीनता और अवमानना के कारक माने जाने लगे हैं।

''गोधन, गजघन, बाजिधन और रतन धन खानि,

जो आवै सन्तोष धन सब धन धूरि समान अथवा ''।

''ओरन को धन चाहिए बाबरि बामन को धन केवल भिच्छा'' की निष्ठा वाला समाज आज पूर्णतः बदल गया है। आयातित वस्तुओं को सामाजिक प्रतिष्ठा व उपलब्धि का मूल मान रहा है। मातृभाषा हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी का प्रयोग इस प्रकार – चकाचौंध, ग्लेमर, आकर्षक सुविधा, उपयोगिता, प्रदर्शन दिखावा, झूठा, अहं, दंभ, पाशविक शक्ति, प्रदर्शन यहीं सब हमारे जीवन के मूल्य बन गये हैं। ऐसी स्थिति में समाज क्या व्यक्ति का भी उत्थान सम्भव नहीं है। गुंडागर्दी, व्यभिचार, बलात्कार, सामूहिक नरसंहार, वधूदाह ऐसी स्थितियाँ इन्हीं बिखरे मूल्यों का परिणाम है। विघटित सामाजिक जीवन मूल्यों में पत्नी, परिवार, बालक, गौण ही नहीं निरादृत हो गये है। बड़े–बूढ़े अपमानित है। प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता, स्नेह आदि सामाजिक मूल्य फीके पड़ गये हैं। इन सबसे सामाजिक उत्थान के मूल्यों की मणिमाला बिखर गयी है। प्राचीन आचरण सम्बन्धी मूल्यों का विघटन हो गया है। माता–पिता की सेवा का अब कोई अर्थ ही नहीं रह गया। वृद्धावस्था में सुख की कामना करने वाले पिता को आज का परिवार बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। व्यक्ति के नितान्त निजी धरातल पर परम्परागत दृष्टि को हेय मानकर कुछ नये मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई हैं जैसे – स्त्री–पुरूष सम्बन्धों में अस्तित्व चेतना, यौन स्वच्छन्दता, विद्रोह व्यक्ति स्वातन्त्रय, फुलफिलमेन्ट चयन, जिजीविषा, निर्भीकता आदि (6)।

निष्कर्ष :–

आज चारों ओर विषमता, पाखण्ड, भ्रष्टाचार व्याप्त है। आज स्थितियाँ जो राह नहीं दिखाती उन्हीं में से राह सुझानी है। पुराने मूल्यों एवं परम्परागत प्रतिमानों का विरोध करना ठीक हैं, लेकिन उसके महत्व को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। नये मूल्यों के नाम पर सामाजिक विधि निषेधों की पूर्ण उपेक्षा भी न्यायोचित नहीं कही जा सकती।

जिस प्रकार स्त्री–पुरुष के मध्य तनाव, विरोध और संदेह शाश्वत है ठीक उसी प्रकार इन सबके बावजूद उनका परस्पर मिलन और प्रेम सनातन है। तमाम द्वन्दों के होते हुए भी स्त्री–पुरुष एक साथ जीने के लिए विवश है और उनकी यह विवशता ही विवाह रूपी संस्था की प्रासंगिता, अनिवार्यता और सार्थकता प्रमाणित करती है। उसी प्रकार नये और पुराने मूल्यों के बीच द्वन्द भी स्वाभाविक है और उनके बीच समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाना भी जरूरी है। हम चाहें कितने ही नवीन मूल्यों को अपना लें, उनके आधार पर जीवन को दिशा दें किन्तु अपने उपादेय स्वरूप में हमें प्राचीन मूल्यों को भी स्वीकारना पड़ेगा उनकी महत्ता माननी पड़ेगी तभी जीवन सही दिशा की ओर अग्रसर हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

(1.) डॉ. हुकुम चन्द राजपाल – आधुनिक काव्य में नवीन जीवन–मूल्य, पृष्ठ–19

(2) द इण्डियन माइन्ड, ऐड, बाई सी. ए. मूर, पृष्ठ–153

(3) डॉ. ओम प्रकाश सारस्वत बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक, पृष्ठ–6

(4.) आलोचना (त्रैमासिक) सं नामवर सिंह, अक्टूबर–दिसम्बर 1967 लेख कुमार विमल, 'मूल्य परिवर्तन : मानविकी के सन्दर्भ में, पृष्ठ–65

(5) डॉ. विवेकीराय, धर्मयुग, 26 अप्रैल 1980, पृष्ठ–21